बिहार राज्य

बनाम

राम नरेश पांडे

(संबंधित अपील के साथ)

(जगन्नाथदास, जाफर इमाम और गोविंदा मेनन जे.जे.)

31 जनवरी 1957

दाण्डिक विधि- अभियोजन- लोक अभियोजक के द्वारा मामला वापस लेने का अवेदन- न्यायालय की सहमति- न्यायिक प्रक्रिया इस तरह के प्रकरण में सहमति बाबत- सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय मामला- क्या मामला वापस लेने के लिए आवेदन कमिटल स्टेज पर पोषणीय नहीं है- ‘‘विचारण‘‘ ‘‘निर्णय‘‘, का अर्थ- दंड प्रक्रिया संहिता 1898 (1898 का अधिनियम 5), धारा 494.

दंड प्रक्रिया संहिता 1898 की धारा 494 के द्वारा - कोई भी लोक अभियोजक, न्यायालय की सहमति से, उन प्रकरणों में जहां ज्यूरी द्वारा विचारणीय है, निर्णय की वापसी से पहले एवं अन्य प्रकरणों में निर्णय सुनाये जाने से पूर्व किसी भी व्यक्ति के विरूद्ध अभियोजन सामान्यतः या किसी एक या एक से अधिक अपराधों के संबंध में वापस ले सकता है। जिसके लिए उस मुकदमा चलाया जाता है- (क) यदि यह आरोप तय किए जाने से पहले किया जाता है, तो अभियुक्त को ऐसे अपराध या अपराधों के

संबंध में आरोप मुक्त कर दिया जाएगा। (ख) यदि यह आरोप तय किए जाने के बाद किया जाता है, या जब इस संहिता के तहत किसी आरोप की आवश्यकता नहीं होती है, तो उसे ऐसे अपराध या अपराधों के संबंध में दोषमुक्त कर दिया जाएगा।

एम. और अन्य पर अभियोजन की शुरूआत प्रथम प्रत्यर्थी की पहली सूचना पर शुरू किया गया था, और जब मामला मजिस्ट्रेट के समक्ष कमिटल स्अेज पर लंबित था और साक्ष्य प्रस्तुत नहीं की गई थी तो लोक अभियोजक के द्वारा उनके विरूद्ध अभियोजन वापस लिये जाने का आवेदन इस आधार पर कि उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर एम. के. अभियोजन को आगे बढाना न्यायसंगत एवं उचित नहीं होगा, धारा 494 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत पेश किया गया।

मजिस्ट्रेट की राय थी कि उस सहमति को रोकने का कोई कारण नहीं था जिसके लिए आवेदन किया गया था, तदनुसार उन्होंने आरोपी को आरोप मुक्त कर दिया। इस आदेश को सत्र न्यायाधीश द्वारा पुष्ट किया गया, लेकिन प्रत्यर्थी के द्वारा रिवीजन प्रस्तुत करने पर उच्च न्यायालय ने उसे अपास्त कर दिया एवं मजिस्टे^{a}ट को साक्ष्य लेखबद्ध करने एवं उसके पश्चात् यह देखने का निर्देश दिया कि अभियुक्त के विरूद्ध प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं। राज्य ने विशेष अनुमति के द्वारा उच्च न्यायालय के आदेश के विरूद्ध अपील की, जबकि प्रत्यर्थी ने इस आधार

पर आदेश का समर्थन किया कि (1) अभियोजन वापस लेने के लिए प्रस्तुत प्रार्थना पत्र पर्याप्त सबूत एवं विश्वसनीय साक्ष्य के आधार पर नहीं किया गया है। मजिस्टेट को साक्ष्य के संबंध में प्रारंभिक जांच करनी चाहिए और (2) ज्यूरी द्वारा विचारणीय प्रकरण जो कि सेशन न्यायालय से संबंधित है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 594 के अंतर्गत कमिटल स्टेज पर पोषणीय नहीं है।

अभिनिर्धारितः- (1) यद्यपि न्यायालय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 594 के अंतर्गत सहमति देना एक न्यायिक प्रक्रिया है, यह आवश्यक नहीं है कि विवेकाधिकार का प्रयोग केवल न्यायिक पद्धति द्वारा एकत्र की गई सामग्री के संदर्भ में किया जाए, और न्यायालय को यह करना है कि अभियोजन को वापस लेने के लिए प्रस्तुत आवेदन करने में कार्यकारी द्वारा अनुचित तरीके नहीं अपनाया गया हो और यह न्यायालय की सामान्य प्रक्रिया में हस्तक्षेप करने का अवैध एवं अनुचित प्रयास न हो।

(2) संहिता की धारा 494 में ट्राईड ‘‘विचारण‘‘ शब्द का प्रयोग सीमित अर्थ के लिए नहीं किया गया है इस धारा का प्रयोग विस्तृत रूप से जांच व मुकदमे के विचारण में लागू होगा जो कि मुकदमे को समाप्त करने या उन्मोचित करने एवं दोषमुक्त करने में सक्षम है और उस चरण के अनुसार जिस पर मुकदमा वापस लेने के लिए आवेदन किया जाता है।

प्रकरण को कमिटल करने का आदेश जो कि कार्यवाहियों को समाप्त करता है, वह ''निर्णय'' है धारा 494 दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान के अनुसार।

गिरिबाला दासी बनाम मदर गाजी, (1932) आई. एल. आर. 60 कलकत्ता 233, एवं विश्वनाथम बनाम मदन सिंह, आई. एल. आर. (1949) मद्रास 64, (अनुमोदन)

आपराधिक अपील क्षेत्राधिकारः दांण्दिक अपील नंबर 53 एवं 54/1956

विशेष अनुमति द्वारा प्रस्तुत अपील जो कि पटना उच्च न्यायालय के दांडिक पुर्निरीक्षण याचिका नंबर 102/1955, जो कि सेशन न्यायालय मानभूम सिंहभूम के आदेश दिनांकित 10.01.1955 के संदर्भ में जो कि दांडिक याचिका नंबर 43/1954 के संदर्भ में उत्पन्न हुआ।

महाबीर प्रसाद, महाधिवक्ता-बिहार, तारकेश्वरनाथ एवं एस.पी. वर्मा अपील नंबर 53 में अपीलार्थी की ओर से एवं अपील नंबर 54 में प्रत्यर्थी नंबर 3 की ओर से।

एच. जे. उमरीगर और ए. जी. रतनपारखी, अपील सं. 54 में अपीलार्थी की ओर से।

जय गोपाल सेठी एवं गोविंदसरन सिंह अपील नंबर 53 में प्रत्यर्थी की ओर से और अपील नंबर 54 में प्रत्यर्थी नंबर 1 या 2 की ओर से। न्यायालय का निर्णय 31 जनवरी 1957 को द्वारा दिया गया।

जे. जगन्नाथदास- यह अपील अधीनस्थ न्यायाधीश मजिस्ट्रेट धनबाद के द्वारा संहिता की धारा 494 के अंतर्गत लोक अभियोजक द्वारा अभियोजन वापस लिये जाने के प्रस्तुत आवेदन पर सहमति देने एवं अभियुक्त महेश देसाई को उन्मोचित करने के आदेश के विरूद्ध प्रस्तुत हुई है। अभियोजन ने रामनरेश पांडे के द्वारा दी गई प्रथम सूचना पर 28 व्यक्तियों के विरूद्ध नंदकुमार चैबे की हत्या के आरोप का अभियोजन प्रारंभ किया जो कि बागडिगी में एक कोलया खदान का एक चपरासी था। यह घटना 20 फरवरी 1954 को जब गंभीर दंगे हो रहे थे, उसके दौरान हुई थी। यह कहा जाता है कि दो श्रमिकों के संगठनों में हडताल के संबंध में मतभेद होने के कारण यह घटना हुई थी। अभियोजन का आरोप अधिकांश व्यक्तियों के विरूद्ध था। भारतीय दंड संहिता की विभिन्न धाराओं के साथ-साथ धारा 302 के अंतर्गत इस आधार पर था कि वास्तव में हत्या में उनकी भागीदारी थी लेकिन अपीलार्थी महेश देसाई के विरूद्ध धारा 302/109 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत था जिसमें यह उल्लेख किया गया कि उसने उकसाया, कुछ भाषणों, उपदेशों एवं हत्या से पूर्व सामूहिक वार्ताओं में घटना से एक दिन पहले शामिल हुआ। अपीलार्थी के विरूद्ध प्रकरण वापस लिये जाने का आवेदन 6 दिसम्बर 1954 को प्रस्तुत

किया गया जबकि प्रकरण मजिस्टेªट के समक्ष कमिटल स्टेज पर एवं साक्ष्य लेखबद्ध किये जाने से पूर्व की स्टेज पर था। लोक अभियोजक के द्वारा यह आधार लिया गया कि उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर यह न्यायसंगत एवं उचित नहीं होगा कि महेश देसाई के विरूद्ध विचारण प्रारंभ किया जाए, इसलिए यह आवश्यक था कि केवल महेश देसाई के विरूद्ध प्रकरण वापस लिया जाए। बहस के दौरान विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष यह तथ्य आया कि लोक अभियोजक का यह तर्क है कि इस अभियुक्त के विरूद्ध उपलब्ध साक्ष्य इस प्रकृति की है कि वह संदिग्ध है एवं मात्र उक्त साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त के विरूद्ध प्रथम दृष्टया मामला स्थापित नहीं होता है। विद्वान मजिस्ट्रेट के द्वारा प्रकरण को निष्पक्षता एवं तर्कसंगता के साथ यह आदेश दिया कि प्रस्तुत आवेदन के संबंध में सहमति न देने का कोई कारण नहीं था, इसलिए अभियुक्त को उन्मोचित कर दिया गया। सत्र न्यायालय के द्वारा प्रकरण के प्रथम सूचनाकर्ता व मृतक की विधवा के द्वारा प्रस्तुत रिवीजन याचिका का निस्तारण करते हुए आदेश की पुष्टि की। उक्त निजी पक्षकारों ने प्रकरण को आगे बढाया और मामले को पुर्निरीक्षण याचिका से उच्च न्यायालय में प्रस्तुत किया। विद्वान मुख्य न्यायाधीश जिन्होंने प्रकरण को सुना उनकी यह राय थी कि सहमति नहीं दी जानी चाहिए थी। इसलिए उन्होंने आदेश अपास्त कर दिया। विद्वान मुख्य न्यायाधीश ने माना कि साधारणतः इस तरह के मामलों में उच्च न्यायालय को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए लेकिन

उन्होंने महसूस किया एवं इस आधार पर आदेश को अपास्त किया कि प्रस्तुत प्रकरण में न्यायिक विवेक का उपयोग नहीं किया गया है इसलिए उन्होंने निर्देश दिया कि मजिस्टेªट को साक्ष्य लेखबद्ध करनी चाहिए और फिर प्रकरण पर निर्णय करे कि क्या प्रथम दृष्टया मामला अपीलार्थी महेश देसाई के विरूद्ध बनता है या नहीं। महाअधिवक्ता राज्य की ओर से इस न्यायालय के समक्ष विद्वान मुख्य न्यायाधीश के आदेश के विरूद्ध आये हैं। याचिका प्रस्तुत करने की अनुमति दी गई, क्योंकि यह तर्क दिया गया था कि विद्वान मुख्य न्यायाधीश के द्वारा दिया गया मत त्रुटिपूर्ण था एवं इस तरह के प्रकरणों में विधिक रूप से अनुमत सिद्धांतों के विरूद्ध था तथा विद्वान मुख्य न्यायाधीश का निर्णय राज्य में विपरीत प्रभाव डालेगा जिसमें कि महेश देसाई सम्मिलित था। पीडित पक्षकारा महेश देसाई भी विशेष अनुमति याचिका लेकर आया और दोनों याचिकाओं को इस निर्णय के द्वारा निस्तारित किया गया।

प्रकरण में सम्मिलित विधिक प्रश्न विद्वान मुख्य न्यायाधीश के निर्णय के निम्न भाग से लिया जा सकता है। ‘‘यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें कोई सबूत न हो, इसके विपरीत यह एक ऐसा मामला है जिसमें साक्ष्य पर न्यायिक विचार की आवश्यकता है। विद्वान विशेष मजिस्ट्रेट के द्वारा जिस प्रक्रिया का पालन किया वह अभियुक्त को बचाने वाली एवं पर्याप्त साक्ष्य एवं उपलब्ध साक्ष्य पर विचार किये बिना एवं उसे सुने बिना ..... लोक अभियोजक के समक्ष न्यायालय की प्रक्रिया का

आत्म समर्पण होगा। मुझे नहीं लगता कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 494 इस तरह की प्रक्रिया को उचित मानती है।

उपरोक्त से उत्पन्न होने वाला विधिक प्रश्न है- क्या जहां एक प्रार्थना पत्र धारा 494 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत मुकदमा वापस लेने के लिए प्रस्तुत इस आधार पर किया है कि अपर्याप्त साक्ष्य और विश्वसनीय साक्ष्य की अनुपलब्धता, क्या यह एक अनुचित न्यायिक विवेक को प्रयोग करने की प्रक्रिया है कि न्यायालय के द्वारा अनुमति देने से पूर्व साक्ष्य लेखबद्ध की जाए, यदि न्यायालय इस बात पर संतुष्ट हो जाता है कि जब साक्ष्य लेखबद्ध नहीं की गई है, यदि वह लेखबद्ध की जाए तो भी इस बात की संभावना नहीं है कि आरोपी दोषसिद्ध होगा।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 494 का प्रावधान इस प्रकार हैः- ‘‘कोई भी लोक अभियोजक न्यायालय की अनुमति के साथ ज्यूरी द्वारा विचारणीय प्रकरण में निर्णय की वापसी से पूर्व और अन्य प्रकरणों में निर्णय सुनाए जाने से पूर्व अभियोजन को किसी व्यक्ति विशेष के विरूद्ध और साधारणतः या किसी एक या एक से अधिक अपराधों के संबंध में जिसका कि उसके विरूद्ध विचारण चलाया जाता है, वापस ले सकता है और ऐसी वापसी पर -

(क) यदि यह आरोप विरचित किये जाने से पूर्व किया जाता है, तो अभियुक्त उक्त अपराध एवं अपराधों के संबंध में उन्मोचित घोषित किया जाएगा।

(ख) यदि यह आरोप विरचित किए जाने के बाद किया जाता है, या जब इस संहिता के तहत किसी आरोप विरचित किये जाने की आवश्यकता नहीं है, तो वह ऐसे अपराध या अपराधों के संबंध में दोषमुक्त किया जाएगा।

यह धारा लोक अभियोजक को इस बात के लिए सक्षम करती है कि वह अपने विवेक का प्रयोग करते हुए न्यायालय के समक्ष लंबित मुकदमों को वापस लेने के लिए आवेदन प्रस्तुत कर न्यायालय की अनुमति प्राप्त करे। न्यायालय की सहमति यदि दे दी जाती है तो उसका परिणाम अभियुक्त की दोषमुक्ति और उन्मोचन होगा जैसा कि प्रकरण होगा। इस धारा में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिन आधारों पर लोक अभियोजक आवेदन प्रस्तुत कर सकता हो या जिन आधारों पर विचार करते हुए न्यायालय अपनी सहमति प्रदान करे। इस बात में कोई संदेह नहीं है कि न्यायालय की सहमति के आधार पर जो आदेश उन्मोचन और दोषमुक्ति का होगा, उस पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 435, 436, 439 एवं 417 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा त्रुटि सुधार की प्रयोजिता को आकर्षित करेगा, इसलिए न्यायिक प्रक्रिया में इस तरह की सहमति देना भी न्यायिक

प्रक्रिया का एक भाग है, इसलिए न्यायालय को इस तरह की सहमति देने के लिए न्यायिक विवेक का प्रयोग करना चाहिए। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि न्यायिक विवेक का प्रयोग केवल न्यायिक प्रक्रिया के द्वारा एकत्रित किये गये तथ्यों के संबंध में ही किया जाना है अन्यथा धारा 494 के विस्तृत प्रावधान प्रयोग में अत्यंत सीमित हो जाएंगे। इस धारा को समझना और लागू करना दो मुख्य विशेषताएं हैं जिन्हें ध्यान में रखा जाना चाहिए। इसमें लोक अभियोजक के द्वारा पहल की जानी चाहिए और न्यायालय को केवल अपनी सहमति देनी चाहिए, न कि उक्त प्रकरण को न्यायिक रूप से निर्णय करना चाहिए। जैसा कि प्रिवी काउंसिल ने बाबा फकीर सिंह बनाम द किंग एम्परर (1) में यह ध्यान दिलाया है कि ''यह (धारा 494 दंड प्रक्रिया संहिता) सामान्य विवेक शक्तियां (लोक अभियोजक को) प्रदान करती है कि न्यायालय से मुकदमे को न्यायालय की सहमति के अध्याधीन वापस लिया जाए, जो कि विभिन्न आधारों पर निर्धारित हो सकती है''। आमतौर पर ऐसे आवेदन पर सहमति देने की न्यायिक प्रक्रिया का अर्थ यह होगा कि न्यायालय को स्वयं को यह संतुष्ट करना होगा कि लोक अभियोजक के द्वारा किया गया उक्त कार्य अनुचित तरीके से नहीं किया गया है और अवैध कारणांे एवं अवैध उद्देश्यों के लिए इसका प्रयोग नहीं किया गया है। इस संदर्भ के लिए यह ध्यान रखना आवश्यक है कि लोक अभियोजक (यद्यपि कार्यकारी अधिकारी वैसा है जैसा कि प्रिवी काउंसिल बाबा फकीर सिंह बनाम द किंग एम्परर (1)) की भूमिका एक

विस्तृत भूमिका है जो कि न केवल न्यायालय का एक अधिकारी है बल्कि वह न्यायालय की सहायता निस्पक्ष करने के लिए बाध्य है जिसके लिए न्यायालय को अपनी न्यायिक प्रक्रिया का निष्पक्षता से संचालन करने में सहायता प्राप्त हो। यहां यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि इस देश में आपराधिक न्याय प्रशासन में कार्यकारी अधिकारी की यह प्राथमिक भूमिका है कि वह गंभीर मामलों (जो कि संज्ञेय अपराध के रूप में वर्गीकृत) में न्याय को सुनिश्चित करे। एक बार (1) (1938) L.R.65 I.A. 388, 395.

जब इस तरह के किसी अपराध किये जाने की सूचना इसके लिए गठित अधिकारिता पहुंच जाती है, तो जांच, जिसमें साक्ष्य को एकत्रित करना, अपराध के लिए अभियोजन चलाना भी कार्यपालिका का ही कार्य है, लेकिन मजिस्ट्रेट का भी इस प्रक्रिया में उस स्तर पर उसका निर्धारित कार्य है। उदाहरण के लिए अनुसंधान के दौरान गिरफ्तार व्यक्ति उसके समक्ष 24 घंटों के भीतर पेश किया जाना चाहिए (धारा 61 दंड प्रक्रिया संहिता) गिरफ्तार किये गये व्यक्ति की अभिरक्षा अनुसंधान के लिए समय-समय पर उसके द्वारा अधिकृत की जाये। (धारा 167) उसके द्वारा जारी किये गये वारंट पर तलाशी ली जाए। (धारा 96) गवाहों के बयान और संस्वीकृति उसके द्वारा लेखबद्व की जानी चाहिए। (धारा 164) किसी प्रकरण में वह अनवेषण और अग्रिम अनुसंधान का भी आदेश कर सकता है। (धारा 155(2) और (202)) इन सभी मामलों में वह अपनी विवेकिय शक्तियों का प्रयोग करता है जिसकी पहल कार्यपालिका की होती है लेकिन

जिम्मेदारी उसकी होती है। ऐसे मामलों में उसकी विवेकिय शक्तियों का उपयोग उपलब्ध सामग्री के आधार पर किया जाना चाहिए जो कि उपलब्ध है न कि किसी विशिष्ट मुद्दे का न्यायिक निर्धारण करना। इन मामलों मजिस्टेªट का कार्य न केवल कार्यपालिका के कार्य का पूरक बनना है। बल्कि उनका उद्देश्य दुरूपयोग को रोकना है। धारा 494 के अनुसार लोक अभियोजक के लिए आवश्यक है कि मामला वापस लेने के लिए न्यायालय की सहमति प्राप्त करे, न्यायालय द्वारा पूछताछ और विचारण के सम्बन्ध में संहिता के प्रावधानों के अनुसार किसी विचारणीय मुद्दे की न्याय निर्णयन की प्रथम दृष्टया जिम्मेदारी न्यायालय की नही है। उदाहरण के लिए उन्मोचन का परिणाम सदैव यह नहीे निकलता है कि वह "प्रथम दृष्टया कोई मामला नही है" अन्तर्गत धारा 209(1) और 253(1) और इसका मतलब यह नही है कि आधारहीन है अन्तर्गत धारा 209(2) और 253(2) ऐसा नही कहा जा रहा कि लोक अभियोजक के आवेदन पर सहमति हलके में दी जानी चाहिए, बिना जाॅच के एवं बिना सावधानीपूर्वक सहमति दी जाये।

बड़ी संख्या में विभिन्न उच्च न्यायालयों के निर्णयों का हवाला हमारे सामने दिया हमने उनमें सावधानीपूर्वक अवलोकन किया। उन सभी में वे मानते है कि मजिस्टेट का सहमति देने का कार्य एक न्यायिक कार्य है जिसमें कि संशोधन किया जा सकता है। लेकिन उनमें से कुछ में लोक अभियोजक और न्यायालय की स्थिति के सम्बन्ध में प्रयाप्त रूप से

स्थिति स्पष्ट नही थी। जैसा की धारा 494 के अन्तर्गत अपने दायित्वों के निर्वाह में हम उनसे आशा करते है। कम से कम एक सामान्य सहमति बाद के मामलों में थी कि लोक अभियोजक द्वारा सहमति हेतु आवेदन वैद्य रूप से दिया जा सकता है। जिसके कारण अभियोजन की न्यायिक सम्भांवना तक सीमित नही है {देखे द किंग बनाम मोलेबक्स (1) और द किंग बनाम परमानन्द (2)} यदि ऐसा है तो यह स्पष्ट है कि न्यायालय को अपनी विवेकीय शक्तियों का प्रयोग करते हुए सहमति देनी या रोकने में क्या निर्धारित करना है, यह विचारण योग्य नही है जिसके लिए साक्ष्य की आवश्यकता हो।

प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने हमारे समक्ष यह तर्क दिया की सहमति के आवेदन पर स्थिति वहाॅ समान नही होगी जहां आवेदन साक्ष्य की अप्रर्याप्तता व साक्ष्य व विश्वसनिय साक्ष्य के अभाव में और अन्य कारण के आधार पर किया जाता है। यह तर्क दिया गया कि न्यायालय ऐसे मामलें में अपने न्यायिक कार्य का प्रयोग केवल न्यायिक रूप से कर सकता है जिसमें संहिता के उपबन्धों के अध्ययधीन जाॅच एवं विचारण में न्यायिक प्रक्रिया से साक्ष्य लेखबद्व किया जाये। इस तर्क का मतलब यह है कि ऐसी परिस्थिति में न्यायालय को सहमति देने से पहले एक प्रारम्भिक जाॅच सम्बन्धित साक्ष्य के सम्बन्ध में करनी चाहिए उदारण के लिए जब कोई मजिस्टेट धारा 202 दण्ड़ प्रक्रिया संहिता के अनुसार निर्देश दे सकता है इसका अर्थ यह होना चाहिए कि न्यायालय को ऐसे आधारो पर

सहमति नही देनी चाहिए और न्यायालय को अभियोजन के लिए आगे बढ़ना चाहिए और संहिता की धारा के अनुसार उन्मोचित या दोषमुक्त करना चाहिए। हमे ऐसा प्रतीत होता है कि धारा 494 विस्तृीत अर्थो में एक अपवाद और परन्तुक उत्पन्न करता है जो कि विशेष प्रकरणों तक सीमित रहे। हमारी राय में यह धारा के निर्माण का उचित एवं अनुमति योग्य आशय नही है। इसलिए हम विद्वान मुख्य न्यायाधीश के द्वारा लिये गये निर्णय के पक्ष में नहीं है जिसका की निर्णय जिसका की निर्णय अपील के अधीन है जहां साक्ष्य की अप्रर्याप्तता के आधार पर प्रस्तुत आवेदन को न्यायिक विचार की आवश्यकता होना बताया यह उचित नही होगा की न्यायालय वापस लिये जाने के आवेदन पर साक्ष्य लेखबद्व किये जाने पर सहमति दे और उस पर विचार करें हम यह नही समक्ष पाते कि ऐसे आवेदन प्रस्तुत किये जाने से पूर्व लेखबद्व की गई साक्ष्य को ऐसे आवेदन प्रस्तुत करने पर विचार में नही लिया जाये और इस प्रक्रिया के द्वारा लिया गया प्रकरण न्यायिक प्रक्रिया एवं न्याय के दुरूपयोग के समान है।

प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने एक नवीन बिन्दू हमारे समक्ष उठाया है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने मजिस्टेट द्वारा अभियुक्त को उन्मोचित करने के आदेश को अपास्त किया है उसे पुष्ट रखा जाये यह बिन्दू मुख्यतः विधि का बिन्दू है जिस पर बहस की हमने अनुमति दी उनका तर्क यह रहा की सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय प्रकरण में कमीटल स्टैज पर लोक अभियोजक के द्वारा प्रकरण वापस लेने का

आवेदन पोषनीय नही है, उन्होंने धारा 494 के शब्दों पर जोर देते हुए कहा की" जूरी द्वारा विचार किये गये मामले में कोई भी लोक अभियोजक न्यायालय की सहमति से अभियोजन को, किसी भी व्यक्ति के विरूद्व वापस ले सकता है निर्णय से पूर्व" उसके अनुसार इसका आशय यह है कि प्रकरण वापस नही लिया जा सकता है जब तक की वह सेशन न्यायालय में विचारण की स्टैज पर नही पहुंचे वह धारा के आगे अन्य शब्दों पर भी जोर देते" या सामान्यतः और किसी एक के सम्बन्ध में या एक से अधिक अपराधों के सम्बन्ध में जिनके लिये उनका विचारण है" इस वाक्यांश में 'विचारण' शब्द इस तर्क की पुष्टि करता है कि धारा 494 का लाभ तभी उठाया जा सकता है जब प्रकरण विचारण की स्टेज पर पहुंच जाए। उसने हमारा ध्याना आर्क बोर्ड की दांडिक अभिवचन, साक्ष्य और प्रक्रिया (32 वां संस्करण, पृष्ठ 108, 109) जो कि "ए नोले प्रोसीक्वी जो कि कार्यवाहियों को रोकने या जानकारी के लंबित रहने के संबंध मंे किसी भी न्यायालय में महान्यायवादी की अनुमति से, अभियोजक या प्रतिवादी के कहने पर अभियोग पर हस्ताक्षर किये जाने के समय या निर्णय से पूर्व किसी भी समय" उन्होंने यह तर्क दिया कि इस सिंद्धात को धारा 494 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत मान्यता दी है। हमें यह लगता है कि अंग्रेजी दृष्टिकोण को धारा 494 के संदर्भ में प्रयोग में लेना गलत होगा। दंड प्रक्रिया संहिता का उद्देश्य काफी अलग है। महान्यायवादी की शक्तियों के संदर्भ में जो प्रावधान है जो कि ए नोले प्रोसीक्वी से संबंधित है, वह संहिता के अंतर्गत

उच्च न्यायालय में जूरी विचारण से संबंधित है। धारा 494 के अंतर्गत की प्रक्रिया इसके अनुरूप नहीं है। धारा 494 का वाक्यांश ''अन्य प्रकरणों में निर्णय सुनाये जाने से पूर्व'' का संबंध स्पष्टतः उन प्रकरणों से है जो कि जूरी द्वारा विचारण प्रकरणों से भिन्न हैं। अब इसमें कोई संदेह नहीं है कि कम से कम इन अन्य प्रकरणों में जब मुकदमा वापस लेने के आवेदन पर सहमति दी जाती है तो उसका परिणाम उन्मोचक या दोषमुक्त होगा जैसा भी प्रकरण उस समय जिस स्टेज पर होगा, जो कि धारा 494 दंड प्रक्रिया संहिता के (ए) और (बी) को ध्यान में रखते हुए। इसका मतलब जूरी द्वारा विचार किये जाने वाले मुकदमों के अलावा अन्य प्रत्येक मामले में मुकदमा वापस लेने की कार्यवाही किसी भी स्टेज पर हो सकती है। इसमें जूरी के बिना सुनवाई योग्य सेशन प्रकरण भी शामिल होंगे जो कि प्रारंभिक जांच में हैं, लेकिन प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता के तर्क को स्वीकार किया जाये, कि उक्त शक्ति का प्रयोग प्रारंभिक जांच की स्टेज पर नहीं किया जा सकता, उन प्रकरणों के संबंध में जिनमें विचारण जूरी द्वारा किया जाना है। हम ऐसा कोई कारण नहीं पाते हैं जो कि संहिता में इस प्रकार का अंतर करता हो। हम धारा 494 के प्रावधानों पर इस प्रकार की सीमा अधिरोपित करने में असक्षम हैं। शब्दावली पूर्णतः विस्तृत व्यापक है जो कि सभी प्रकरणों पर लागू होते हैं जो कि आरोपी को उन्मोचित या दोषमुक्त करते हैं जैसा भी प्रकरण की स्टेज हो। विद्वान अधिवक्ता का पूरा तर्क ''विचारण'' शब्द पर जोर देते हुए है और संहिता के अनुसार

''जांच'' और ''विचारण'' के अंतर पर जोर दे रहे हैं। हमारा ध्यान संहिता की धारा 4(के) में जांच की परिभाषा पर दिलाया गया जो कि इस प्रकार है-

''जांच में हर जांच शामिल है, जिसमें मजिस्ट्रेट और न्यायालय के द्वारा विचारण से भिन्न है।

इस परिभाषा में शायद ही कुछ ऐसा है जो कि इस प्रश्न पर प्रकाश डालता है कि क्या विचारण शब्द इस संबंधित धारा के लिए सीमित अर्थों में प्रयुक्त में लिया है जिसमें कि जांच शामिल नहीं है। संहिता में विचारण शब्द परिभाषित नहीं है। स्टोड्स ज्यूडिशियल शब्दकोष के अनुसार विचारण से आशय है कि एक सक्षम अधिकरण के द्वारा दिया गया निष्कर्ष जो कि न्यायिक कार्यवाही में दिया गया है, चाहे वह दीवानी हो या दांडिक (1) और वास्टन लाॅ लैक्सियन के अनुसार दांडिक या सिविल प्रकरण की सुनवाई जो कि एक न्यायाधीश के समक्ष है जिसका कि उस पर क्षेत्राधिकार है, उस देश की विधि के अनुसार है (2) शब्द विचारण और विचारित का पूरे विश्व में कोई सार्वभौमिक एवं स्वीकार्य अर्थ नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस संहिता के विभिन्न प्रावधानों में विचारित और विचारण शब्दों का प्रयोग प्रकरण की उक्त स्टेज के संदर्भ में किया है जो कि जांच के बाद की है। इसका मतलब है कि उस शब्द का प्रयोग उन धारा के शब्दों को ध्यान में रखते हुए प्रयोग मंे लिया है। इसका कोई

कारण नहीं है कि क्यों और कहां किन शब्दों को संहिता में अन्य संदर्भों में काम में लिया है, वे निश्चित रूप से उस संदर्भ एवं उसकी महत्वत्ता सीमित रहने के लिए वे शब्द हैं जिनका कि उक्त विशिष्ट संदर्भ में ही विचार किया जाना चाहिए जिसके वे प्रयोग में प्रयुक्त हुए हैं और जिसके संबंध में उक्त प्रावधान और योजना का प्रयोग किया है।

प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता के द्वारा यह तर्क भी हमारे समक्ष रखा है कि शब्द निर्णय और निर्णय सुनाये जाने से पूर्व शब्दों का धारा 494 में प्रयोग यह दर्शाता है कि शब्द ''अन्य मामलों में'' उन्हीं कार्यवाहियों तक सीमित है जो कि नियमित निर्णय से समाप्त होती है ना कि कमिट किये जाने के अंतवर्ती आदेशों से। यहां फिर से विद्वान अधिवक्ता की इस बात को स्वीकार करते हैं कि शब्द निर्णय को परिभाषित नहीं किया है। यह शब्द सामान्य महत्व का है जो कि केवल ''न्यायिक निर्धारण और न्यायालय का निर्णय है''। (देखे वास्टन लाॅ लैक्सियन 14 संस्करण पृष्ठ 545) इस संदर्भ में यह सोचने का कोई कारण नहीं है कि यह प्रावधान कमिटल के आदेश पर लागू नहीं होगा जो कि जांच न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों को इस संबंध में समाप्त करता है। यह हो सकता है कि संहिता के अध्याय 26 वें के संदर्भ में निर्णय का एक सीमित अर्थ है। किसी भी दृष्टिकोण से भले इस संदर्भ में निर्णय को सीमित अर्थों में समझा जाए, परंतु यह प्रारंभिक जांच के दौरान प्रस्तुत आवेदन पर लागू नहीं होगा

जो कि आवश्यक रूप से निर्णय से पहले है जिससे कि विचारण से बाहर रखा गया है।

वर्तमान दंड प्रक्रिया संहिता (1898 का अधिनियम 5) की धारा 494 का इतिहास इस दृष्टिकोण की पुष्टि करता है कि लोक अभियोजक द्वारा न्यायालय की सहमति से मुकदमा वापस लेने का प्रावधान सर्वप्रथम दंड प्रक्रिया संहिता 1872 (1872 का अधिनियम 10) में पहली बार दिखाई दिया था, जो कि धारा 61 का इस प्रकार है-

> ''लोक अभियोजक न्यायालय की सहमति से कोई भी आरोप किसी भी व्यक्ति के विरूद्ध किसी भी प्रकरण में जिसका कि उस पर आरोप है, वापस ले सकता है और ऐसी वापसी पर यदि प्रकरण जांच में है, अभियुक्त उन्मोचित होगा। यदि ऐसा आवेदन विचारण के दौरान है तो अभियुक्त दोषमुक्त होगा''।

नई संहिता 1882 में (1882 का 10) धारा 494 में प्रावधान इस प्रकार है-

''कोई भी लोक अभियोजक जो कि गर्वनर जनरल इन काउंसिल या स्थानीय सरकार के द्वारा नियुक्त किया गया है, न्यायालय की सहमति से, जूरी द्वारा विचारणीय प्रकरणों में निर्णय की वापसी से पूर्व, और अन्य प्रकरणों में निर्णय सुनाये जाने से पूर्व अभियुक्त के विरूद्ध अभियोजन

वापस ले सकता है और ऐसा प्रकरण को वापस लिया जाना और ऐसी वापसी पर -

(क) यदि यह आरोप विरचित किये जाने से पूर्व किया जाता है, तो अभियुक्त उक्त अपराध एवं अपराधों के संबंध में उन्मोचित घोषित किया जाएगा।

(ख) यदि यह आरोप विरचित किए जाने के बाद किया जाता है, या जब इस संहिता के तहत किसी आरोप विरचित किये जाने की आवश्यकता नहीं है, तो वह ऐसे अपराध या अपराधों के संबंध में दोषमुक्त किया जाएगा।

यहां यह देखा जाता है कि इस धारा का पुनः प्रारूप परिवर्तित किया है जो कि दो परिवर्तन लाता है। यह धारा ऐसी प्रतीत होती है जैसी कि संहिता 1898 को (अधिनियम 1898 का 5)। अगला परिवर्तन इस धारा में अधिनियम 1923 के 28 के द्वारा जोडा गया है जो शब्द है कि ‘‘या तो सामान्यतः या किसी एक के सबंध में या एक से अधिक अपराधों के संबंध में जिसका कि उस पर विचारण था‘‘ धारा 494 में उचित स्थान पर जोडा है जैसा कि 1882 की संहिता में था (इसके अतिरिक्त जिन शब्दांशों को हटाया है, गर्वनर जनरल द्वारा और स्थानीय सरकार द्वारा नियुक्ति) । वर्तमान धारा 494 1882 की संहिता से संबंधित है, जैसा कि इसे परिवर्तित किया गया है इसे इस प्रकार देखा जाएगा 1872 और 1923 के

बीच में इसमें तीन परिवर्तन किये गये हैं जिसमें धारा 61 1872 की संहिता का। 1882 में पहले दो परिवर्तन इस आशय से किये गये थे कि उन्मोचन और दोषमुक्त इस बात के अंतर पर निर्भर नहीं रहेंगे कि जाचं या विचारण हैं, बल्कि इस बात पर रहेंगे कि आरोप विरचित हुए हैं या नहीं। दूसरा यह स्पष्ट है कि प्रार्थना पत्र सामान्यतः निर्णय सुनाये जाने से पूर्व प्रस्तुत किया जा सकता है लेकिन इसका अपवाद है कि जिन प्रकरणों में जूरी द्वारा विचारण किया जाना है उनमें प्रार्थना पत्र उस समय तक किया जा सकता है जबकि फैसला सुनाये जाने के समय के पूर्व तक । तीसरा परिवर्तन 1923 में यह स्पष्ट करने के लिए था कि केवल संपूर्ण मुकदमा ही वापस नहीं लिया जा सकता बल्कि उस व्यक्ति विशेष जिसके खिलाफ मुकदमा चल रहा है एक या एक से अधिक आरोप भी वापस लिये जा सकते हैं। ये तीन परिवर्तन विशिष्ट उद्देश्य से लाये गये जो कि स्पष्ट है। यह धारा मूल रूप से 1872 की संहिता में थी जिसका कि काफी विस्तृत क्षेत्र. था जो कि समस्त प्रकरणों को शामिल करती थी, केवल जूरी द्वारा विचारणीय प्रकरणों को छोडकर जबकि वे प्रकरण प्रारंभिक जांच में हों। इस बात को सोचने का कोई कारण नहीं है कि ये परिवर्तन इस उद्देश्य से किये गये कि प्रारभिक जांच को धारा 494 के क्षेत्र के दायरे से बाहर रखा जाये, जैसा कि ये अंत में सामाने आई है। इसका भी उल्लेख किया जा सकता है कि शब्द ‘‘जांच‘‘ और ‘‘विचारण‘‘ दोनों ही को 1872 की संहिता में परिभाषित किया था परंतु ‘‘विचारण‘‘ की परिभाषा को 1882

की संहिता में विलोपित किया है और उसके बाद 1898 की संहिता में शब्द ''जांच'' को आंशिक तौर पर संशोधित किया है और ''विचारण के अलावा'' शब्द जोडा है और विचारण को अपरिभाषित रखा है। इन क्रमिक विधायी परिवर्तन जो कि समय-समय पर धारा 494 के संदर्भ में हुए हैं और शब्द ''जांच'' की परिभाषा इस बात की पुष्टि करता है कि धारा 494 का दायरा काफी विस्तृत है जो कि प्रत्येक ''जांच'' और ''विचारण'' को शामिल करता है, जैसा कि शब्द विचारण को इस धारा में सीमित अर्थों में प्रयोग में नहीं लिया है। मुख्यतः इसी प्रकार का दृष्टिकोण गिरीवालादासी बनाम मदारगाजी (1) और विश्वानंदम बनाम मदनसिंह (2) में लिया गया है और इस प्रश्न के संबंध में उसके उक्त तर्क से हम सहमत हैं।

जहां तक अपीलों की गुण दोषों का संबंध है, प्रकरण छोटे से दायरे में है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि लोक अभियोजक द्वारा आवेदन साक्ष्य से पूर्व कमिटल स्टेज पर किया गया। लोक अभियोजक और न्यायायल के पास में केवल प्रथम सूचना रिपोर्ट और गवाहों के बयान जो कि अनुसंधान के दौरान पुलिस द्वारा लिये गये ही उपलब्ध हैं। अपीलांट महेश देसाई के विरूद्ध क्या अभिकथन किये गये , यह प्रथम सूचना रिपोर्ट से प्राप्त किये जा सकते है जो कि इस प्रकार हैं-

''यह व्यक्ति अर्थात् महेश देसाई और अन्य नियमित रूप से बैठक करते थे और बागडिगी केबल संयंत्र और कोक संयंत्र को बंद करने की

वकालत करते थे और दलालों पर हमला करते थे। कल शुक्रवार की सुबह जब कुछ मजदूर अपने काम पर वापस 8 नंबर के खदान लोधना पर जा रहे थे तो हडताली मजदूरों ने कुछ व्यवधान पैदा किया जिससे कि वे मजदूर जो काम फिर से शुरू करने जा रहे थे वह ऐसा नही कर सके। लगभग 11 बजे महेश देसाई जो कि कोयला मजदूरों का नेता था, बागडिगी पंचायत पर आया और सभी मजदूरों को काम बंद करने को कहा और वहीं रहकर यह सुनिश्चित करने को कहा कि कोई काम न करे। महेश देसाई के कहने पर मजदूरों ने काम बंद कर दिया। कल रात लगभग साढे ग्यारह बजे जब मैं अपने क्वार्टर पर था जो कि लोधना में स्थित है, जादूवंश तिवारी जो कि बागडिगी कोलियरी का ओवरमैन है उसने कहा कि सोजीसिंह और रामधरसिंह ने उसे बताया कि शाम को लगभग साढे छः बजे महेश देसाई बागडिगी महावीर अस्थन आया और 120-125 मजदूरों को इकट्ठा किया और मीटिंग किया तथा महेश देसाई ने बताया कि उसे पता चला है कि कंपनी और उसके दलाल कुछ मजदूरों को लेकर पिट नंबर 10 पर जाएंगे और सुबह काम शुरू करेंगे। आज सुबह फागूदुसाद, जलोदुसाद, चमारी दुसाद और अन्य लोगों ने मीटिंग में भाग लिया। महेश देसाई ने उन्हें कहा कि आप अपने-अपने कार्य जाकर देखें कि क्या वहां कोई काम तो नहीं कर रहा है और हर परिस्थिति के लिए तैयार रहें। लोधना के मजदूर भी आपकी मदद के लिए आएंगे। पुलिस आपको किसी प्रकार की क्षति नहीं कर सकती। मीटिंग सुबह साढे सात बजे समाप्त हुई।

महावीर देसाई अपनी जीप से महावीर स्थान से पिट नंबर 10 पर गया और मजदूरों को अपनी हडताल पर कायम रहने को कहा। इसके बाद फागु, जलो और हरिचरण दुसाद बागडिगी के उसके साथ उसकी जीप के पास बात करने लगे। जादूवंश तिवारी ने सुना की महेश देसाई कहा रहा था कि "हमें जीत के लिए यह आवश्यक है कि इन दलालों को खत्म किया जाए, आप इसके लिए तैयार रहें। यह कहते हुए अपनी जीप में चढ गया और अंत में महेश देसाई ने फागु, हरिचरण और जलोदुसाद को कहा कि सबको खत्म करदो जो होगा देखा जाएगा"। इसके बाद महेश देसाई उसकी जीप से चला गया और फागु, जलो व हरिचरण वापस आ गये।

प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह कहा गया है कि जो भी अगले दिन हुआ दंगे आदि के माध्यम से हुआ। कहा जाता है कि फागु, जलो और हरिचरण दुसाद ने अन्य लोगों के साथ नंदकुमार चैबे का पीछा किया और फागु ने फरसे से एक हमला किया। हरिचरण ने लाठी से हमला किया जिसके कारण नंदकुमार चैबे गिरकर मर गया। प्रथम सूचना रिपोर्ट के अंतिम भाग में सूचनाकर्ता ने

निम्न प्रकार कहा है-

> "मैं आपके सामने यह बयान देता हूं कि (उकसाते हुए) कल शाम को मीटिंग में और फागु दुसाद, जलोदुसाद एवं हरिचरण दुसाद को पिट नंबर 10 के पास में उकसाया और

एक हजार लोगों की भीड को सुबह में हरिवंश सिंह और अन्य मजदूरों ने इकट्ठा किया जो कि महेश देसाई के संगठन के थे और नंदकुमार चैबे की हत्या फागु दुसाद, जलोदुसाद और हरिचरण दुसाद के द्वारा सुबह 08:15 एएम पर लाठी व फरसे से करवाई''।

इससे स्पष्ट है कि महेश देसाई के बारे में क्या कहा गया है कि उसने मजदूरों को एक बार सुबह ग्यारह बजे फिर शाम को साढे छः बजे और साढे सात बजे उकसाया। उकसाने के संबंध में यह प्रथम सूचना रिपोर्ट से स्पष्ट नहीं है कि सूचनाकर्ता से व्यक्तिगत बात की या उसने मजदूरों से सुना। जहां तक संबंध है साढे छः और शाम के साढे सात बजे का तो यह स्पष्ट है कि वह व्यक्ति जिसने सूचनाकर्ता को सूचना दी वह जादूवंश तिवारी था और उसकी सूचना स्वयं श्योजीसिंह और रामधनसिंह के द्वारा बताये जाने के आधार पर थी, इसलिए यह देखा जा सकता है कि अभियोजन आवश्यक रूप से जादूवंश तिवारी की साक्ष्य पर निर्भर है एवं संभवतः श्योजीसिंह और रामधरसिंह की साक्ष्य पर जिसमें ये तीनों व्यक्ति महेश देसाई के द्वारा विभिन्न स्तरों पर उकसाने के बारे में कह सकते हैं। अनुसंधान के दौरान संभवतः इन गवाहों से पुलिस द्वारा पूछताछ की गई होगी। अब इस उपलब्ध सामग्री पर हमें यह लगता है कि विचारण न्यायालय और सत्र न्यायालय दोनों द्वारा इस राय पर क्यों पहुंचा गया कि अभियोजन द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्री के आधार पर कोई

दोषसिद्धि की जा सकती, ऐसा कहा जाना उचित नहीं है। धारा 494 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत सहमति नहीं रोकी जानी चाहिए। जबकि निजी शिकायतकर्ता को भी इस कार्यवाही में भाग लेने की अनुमति दी गई थी और उसकी भी आपत्ति याचिका नहीं थी और पुनरीक्षण याचिकाओं में भी ऐसी कोई सामग्री या बेहतर सामग्री उपलब्ध नहीं थी और न ही शिकायकर्ता के वकील ने बहस के दौरान इस तरह का तर्क हमारे सामने दिया कि अतिरिक्त सामग्री वहां उपलब्ध हो। इस परिस्थिति में हम इस दृष्टिकोण के हैं कि वापस लेने के आदेश के अतिरिक्त अन्य कोई आदेश ऐसे मामले में पारित नहीं किया जाना चाहिए, जैसा कि विधि के अनुसार और प्रकरण की विषयवस्तु के अनुसार इस मामले में पारित किया जाना चाहिए। हम यह मानते हैं कि विद्वान मुख्य न्यायाधीश स्वयं ने यह महसूस नहीं किया होगा कि उन्हें मजिस्टेªट के आदेश में पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था इसलिए हम स्पष्ट रूप से इस मत के हैं कि उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त किया जाना चाहिए और अपील स्वीकार की जानी चाहिए। तदनुसार विचारण न्यायालय का आदेश बहाल किया जाता है। हमारे सामने कुछ प्रश्न उठाए गये थे कि क्या विचारण के विभिन्न चरणों में निजी शिकायतकर्ता को कार्यवाही में भाग लेने की अनुमति दी जा सकती है। हमने जो भी कहा है उसका आशय यह नहीं है कि निजी शिकायतकर्ता का सुने जाने का कोई अधिकार हो।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि अभियोजन जो कि आरंभिक चरण पर लंबित है और हत्या की दिनांक से तीन साल बीत जाने के बाद भी शेष अभियुक्तों के विरूद्ध अभी कार्यवाही की जानी है। ऐसी आशा की जाती है कि कार्यवाही में तीव्रता लायी जाएगी।

अपील स्वीकार की गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी राजेश मीणा आर जे एस द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।